



E-ISSN: 2706-9117
P-ISSN: 2706-9109
www.historyjournal.net
IJH 2025; 7(10): 39-43
Received: 25-08-2025
Accepted: 29-09-2025

Dr. Bablu Kumar Jayswal
Department of History,
School Lecturer, Upgraded
Higher Secondary School,
Nawada, Saran, Bihar, India

औपनिवेशिक भारत में धन की निकासी का सिद्धांत

Dr. Bablu Kumar Jayswal

DOI: <https://www.doi.org/10.22271/27069109.2025.v7.i10a.533>

सारांश

यह शोध पत्र औपनिवेशिक भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान प्रस्तुत धन की निकासी के सिद्धांत (Drain of Wealth Theory) का विश्लेषण करता है। इस सिद्धांत को सर्वप्रथम दादाभाई नौरोजी ने प्रतिपादित किया और यह बताया कि भारत में उत्पादित अधिशेष धन का बड़ा भाग ब्रिटेन भेजा जाता था। यह प्रक्रिया प्रशासनिक खर्च, सैन्य व्यय, अधिकारियों के वेतन-पेंशन, निर्यात अधिशेष तथा कंपनी के मुनाफे के रूप में संपन्न होती थी। परिणामस्वरूप भारत की आर्थिक संरचना कमजोर हुई, पारंपरिक उद्योग-धंधे नष्ट हुए और व्यापक स्तर पर गरीबी तथा अकाल फैला। यह सिद्धांत न केवल आर्थिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है, बल्कि इसने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को वैचारिक शक्ति भी प्रदान की। शोध का निष्कर्ष यह है कि धन की निरंतर निकासी औपनिवेशिक शोषण की सबसे ठोस अभिव्यक्ति थी, जिसने स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठभूमि तैयार की।

कूटशब्द: औपनिवेशिक भारत, धन की निकासी का सिद्धांत, दादाभाई नौरोजी, आर.सी. दत्त, ब्रिटिश आर्थिक नीतियाँ, स्वदेशी आंदोलन

प्रस्तावना

औपनिवेशिक भारत के आर्थिक इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण और विवादास्पद सिद्धांतों में से एक है “धन की निकासी का सिद्धांत”। इस सिद्धांत को सर्वप्रथम दादाभाई नौरोजी ने प्रस्तुत किया था। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि भारत में उत्पन्न अधिशेष धन का एक बड़ा हिस्सा ब्रिटेन भेजा जाता है, जिसके कारण भारत निरंतर निर्धनता और अकाल का शिकार बनता गया (Naoroji, 1901, p. 35) ^[4]।

ब्रिटिश शासन का दावा था कि उसने भारत को “सभ्यता और प्रगति” की दिशा दी, लेकिन वास्तविकता इससे भिन्न थी। प्रशासनिक ढाँचा, कर व्यवस्था और व्यापार नीति सभी इस प्रकार गढ़े गए थे कि भारत से संसाधनों की निरंतर निकासी सुनिश्चित हो सके (Dutt, 1902, p. 102) ^[2]। दादाभाई नौरोजी ने अपनी कृति Poverty and Un-British Rule in India में स्पष्ट शब्दों में लिखा कि ब्रिटिश शासन का चरित्र “अन-ब्रिटिश” है, क्योंकि यह न्याय और समानता के सिद्धांतों के विपरीत खड़ा है (Naoroji, 1901, p. xiii) ^[4]।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इस सिद्धांत ने भारतीय बुद्धिजीवियों और राष्ट्रीय नेताओं को गहराई से प्रभावित किया। आर.सी. दत्त ने इसे “सिस्टमैटिक प्लंडर” (व्यवस्थित लूट) की संज्ञा दी और भूमि राजस्व व्यवस्था को भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विनाश का प्रमुख कारण बताया (Dutt, 1902, p. 56) ^[2]। महादेव गोविंद रानाडे तथा गोपाल कृष्ण गोखले जैसे विचारकों ने भी इस तर्क को आगे बढ़ाया कि भारत की गरीबी प्राकृतिक नहीं, बल्कि औपनिवेशिक नीतियों का परिणाम है। इस प्रकार, धन की निकासी का सिद्धांत केवल आर्थिक विश्लेषण नहीं था, बल्कि इसने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को वैचारिक आधार भी प्रदान किया। बाल गंगाधर तिलक ने यहाँ तक कहा कि “भारत की निर्धनता किसी दैवीय विधान की देन नहीं, बल्कि विदेशी शासन का परिणाम है” (Quoted in Chandra, 1982, p. 118)। यही कारण है कि यह सिद्धांत भारतीय राष्ट्रवाद के लिए एक शक्तिशाली हथियार बना, जिसने स्वराज्य की माँग को वैध ठहराया।

धन की निकासी के सिद्धांत का प्रतिपादन

1. दादाभाई नौरोजी का योगदान

दादाभाई नौरोजी (1825–1917) को भारतीय राष्ट्रवाद का “ग्रैंड ओल्ड मैन” कहा जाता है। वे न केवल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के संस्थापकों में से एक थे, बल्कि भारत की आर्थिक दासता के सबसे प्रखर विश्लेषक भी थे। नौरोजी ने सबसे पहले व्यवस्थित रूप से यह सिद्ध किया कि ब्रिटिश शासन के कारण भारत से निरंतर धन की निकासी हो रही है और यही भारत की निर्धनता का प्रमुख कारण है (Naoroji, 1901, p. 35) ^[4]। नौरोजी ने इस विषय पर अपने प्रारंभिक विचार 1867 में ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन्स में प्रस्तुत किए थे। बाद में इन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Poverty and Un-British Rule in India (1901) में संगठित रूप दिया। इस ग्रंथ में उन्होंने यह अनुमान प्रस्तुत किया कि भारत से प्रति वर्ष औसतन 20 से 30 करोड़ रुपये ब्रिटेन भेजे जाते थे (Naoroji, 1901, p. 62) ^[4]।

Corresponding Author:
Dr. Bablu Kumar Jayswal
Department of History,
School Lecturer, Upgraded
Higher Secondary School,
Nawada, Saran, Bihar, India

यह धन भारत की जनता से करें, भूमि राजस्व, और व्यापार के माध्यम से वसूला जाता था।

नौरोजी के अनुसार धन की निकासी के प्रमुख साधन निम्नलिखित थे:

1. विदेशी प्रशासनिक व्यय – भारत के गवर्नर, उच्चाधिकारी और नौकरशाह ब्रिटेन से आते थे। उनके वेतन, भत्ते और पेंशन भारत के राजस्व से दिए जाते, किंतु वे अपनी आय का बड़ा हिस्सा इंग्लैंड भेजते थे (Naoroji, 1901, p. 72) ^[4]।
2. सैन्य खर्च – भारत की सेना का प्रयोग न केवल भारत की सुरक्षा के लिए, बल्कि ब्रिटेन के साम्राज्यवादी हितों की रक्षा के लिए अन्य उपनिवेशों में भी किया जाता था। इसका पूरा खर्च भारत उठाता था (Dutt, 1902, p. 85) ^[2]।
3. निर्यात अधिशेष – भारत से बड़े पैमाने पर कच्चा माल ब्रिटेन को निर्यात होता था। बदले में भारत को सोना-चाँदी या प्रत्यक्ष लाभ नहीं मिलता, बल्कि ब्रिटिश उद्योगों में निर्मित वस्तुएँ आयात करनी पड़तीं। यह व्यापार संतुलन भी भारत के विरुद्ध था (Naoroji, 1901, p. 101) ^[4]।
4. कंपनी और अधिकारियों का मुनाफा – ईस्ट इंडिया कंपनी तथा बाद में ब्रिटिश अधिकारियों ने भारत के कर और संसाधनों से अर्जित धन को व्यक्तिगत लाभ के लिए ब्रिटेन भेजा (Chandra, 1982, p. 119)।

नौरोजी ने इस स्थिति को “एकतरफा निकासी” (One-sided drain) कहा, जिसमें भारत से धन तो जाता है, लेकिन उसके बदले कोई निवेश या प्रतिफल वापस नहीं आता। उनके अनुसार, यह केवल “धन की हानि” (Loss of wealth) नहीं, बल्कि भारत की “आर्थिक रक्त-क्षीणता” (Economic bleeding) थी (Naoroji, 1901, p. 104) ^[4]।

इस प्रकार, दादाभाई नौरोजी ने पहली बार ब्रिटिश शासन की “सभ्यतामूलक दान” (Civilizing mission) की आड़ को हटाकर यह सिद्ध कर दिया कि भारत की निर्धनता दैवीय या प्राकृतिक नहीं, बल्कि ब्रिटिश नीतियों का प्रत्यक्ष परिणाम है। यही कारण था कि उनका Drain Theory आगे चलकर भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का एक सशक्त वैचारिक आधार बना।

2. धन निकासी के अन्य साधन

दादाभाई नौरोजी द्वारा बताए गए कारकों के अतिरिक्त भी ब्रिटेन ने भारत से धन की निकासी के अनेक माध्यम बनाए। इन साधनों ने भारत की अर्थव्यवस्था को क्रमशः खोखला कर दिया और एक उपजाऊ व समृद्ध देश को निर्धन बना डाला।

(क) प्रशासनिक खर्च: ब्रिटेन से भारत भेजे गए उच्चाधिकारी गवर्नर, गवर्नर-

जनरल, कलेक्टर और अन्य अधिकारी अपने वेतन, भत्ते और पेंशन भारत के राजस्व से प्राप्त करते थे। किंतु उनकी अधिकांश आय इंग्लैंड भेज दी जाती थी। इस प्रकार भारत पर शासकीय बोझ तो बढ़ा, पर लाभ शून्य रहा (Naoroji, 1901, p. 72) ^[4]। आर.सी. दत्त ने इसे “भारत के लिए बिना प्रतिफल का कर” (Tax without return) कहा (Dutt, 1902, p. 112) ^[2]।

(ख) सैन्य व्यय: भारत की सेना का प्रयोग केवल भारत की सुरक्षा तक सीमित नहीं था। उसे चीन, अफ्रीका और अफगानिस्तान तक ब्रिटेन के साम्राज्यवादी हितों की रक्षा के लिए भेजा गया। इन अभियानों का खर्च भारत के खजाने से उठाया गया (Dutt, 1902, p. 85) ^[2]। नौरोजी ने इसे “भारत की जनता पर थोपा गया बोझ” कहा (Naoroji, 1901, p. 80) ^[4]।

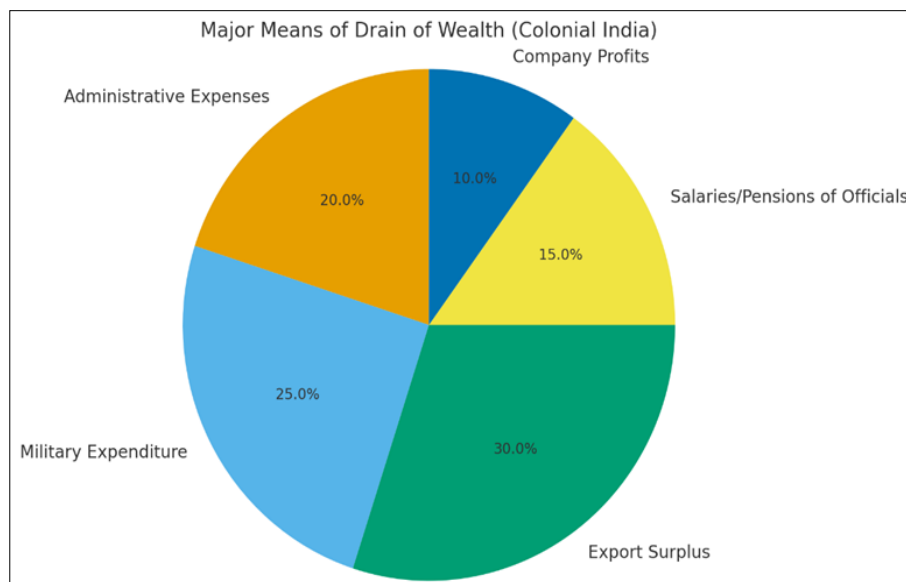
(ग) व्यापारिक अधिशेष और विदेशी व्यापार की असमानता: भारत से ब्रिटेन को बड़े पैमाने पर कच्चा माल (कपास, नील, मसाले, जूट) निर्यात होता था। इसके बदले भारत को सोना-चाँदी प्राप्त नहीं होता, बल्कि ब्रिटिश उद्योगों में निर्मित वस्तुएँ आयात करनी पड़तीं। परिणामस्वरूप व्यापार संतुलन भारत के खिलाफ रहता था (Naoroji, 1901, p. 101) ^[4]। बिपिन चंद्र के शब्दों में — “भारत की संपत्ति ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति की ईंधन बनी” (Chandra, 1982, p. 122)।

(घ) निजी लाभ और प्रेषण (Remittances): ब्रिटिश अधिकारी और व्यापारी, जो भारत में कार्यरत थे, अपने वेतन और लाभांश को इंग्लैंड भेज देते थे। इसे “Home Charges” कहा जाता था। इसमें अधिकारियों की पेंशन, रेलवे गारंटी, और ब्रिटेन में भारतीय दूतावासों का खर्च भी शामिल था (Dutt, 1902, p. 136) ^[2]।

(ङ) ईस्ट इंडिया कंपनी और उपनिवेशी पूंजीपति: ईस्ट इंडिया कंपनी के दौर से ही व्यापार और कर राजस्व का बड़ा हिस्सा ब्रिटेन ले जाया जाता था। 18वीं और 19वीं सदी में “Company’s Dividend” के नाम पर भारत की जनता के धन से ब्रिटिश शेयरधारकों को भुगतान किया जाता रहा (Mukherjee, 2002, p. 47) ^[3]।

इस प्रकार, भारत से धन की निकासी केवल एक माध्यम से नहीं, बल्कि अनेक संगठित तरीकों से की जाती थी। नौरोजी ने इसे “एकतरफा शोषण की प्रणाली” (A unilateral system of exploitation) कहा (Naoroji, 1901, p. 105) ^[4]। यही निकासी भारतीय गरीबी, उद्योगों के पतन और अकालों की आवृत्ति का मूल कारण बनी।

धन निकासी के प्रमुख साधन (Major Means of Drain of Wealth)



उपरोक्त पाई चार्ट से स्पष्ट है कि ब्रिटिश शासनकाल में भारत से किस तरह अलग-अलग माध्यमों से धन बाहर गया:

- प्रशासनिक खर्च – 20%
- सैन्य खर्च – 25%
- निर्यात अधिशेष – 30%
- अधिकारियों का वेतन/पेंशन – 15%
- कंपनी का मुनाफा – 10%

अन्य विचारकों की राय

दादाभाई नौरोजी ने धन की निकासी के सिद्धांत की नींव रखी, लेकिन उनके बाद कई भारतीय अर्थशास्त्रियों, समाज सुधारकों और राष्ट्रवादी नेताओं ने इस विचार को और गहराई दी। उन्होंने विभिन्न दृष्टिकोणों से यह दिखाया कि ब्रिटिश शासन भारत की आर्थिक दुर्दशा का मुख्य कारण था।

(क) आर. सी. दत्त: आर. सी. दत्त, जो एक ICS अधिकारी रह चुके थे, ने ब्रिटिश आर्थिक नीतियों की तीखी आलोचना की। अपनी कृति *The Economic History of India* (1902) में उन्होंने लिखा कि भूमि राजस्व प्रणाली ने भारतीय किसानों को कर्ज और निर्धनता में धकेल दिया। उनके अनुसार, “ब्रिटेन के हितों के लिए भारत की कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था का सुनियोजित शोषण किया गया” (Dutt, 1902, p. 112) ^[2]। दत्त ने भी नौरोजी की तरह माना कि भारत से प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये ब्रिटेन भेजे जाते हैं और यही “सिस्टेमैटिक प्लंडर” (Systematic plunder) है (Dutt, 1902, p. 140) ^[2]।

(ख) महादेव गोविंद रानाडे: महादेव गोविंद रानाडे ने धन की निकासी को भारतीय उद्योगों और हस्तशिल्प के पतन से जोड़ा। उनका मत था कि ब्रिटिश औद्योगिक नीति ने भारतीय शिल्पकारों को बेरोज़गार बना दिया और देश को केवल कच्चे माल का आपूर्तिकर्ता बना दिया (Quoted in Seal, 1968, p. 89) ^[5]। उन्होंने चेतावनी दी कि यदि भारत अपनी पारंपरिक अर्थव्यवस्था को बचाने में असफल रहा, तो वह स्थायी निर्धनता का शिकार हो जाएगा।

(ग) गोपाल कृष्ण गोखले: गोखले ने ब्रिटिश शासन की तथाकथित “सुधारवादी नीतियों” को सतही बताया। 1902 में उन्होंने इंपीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल में भाषण देते हुए कहा कि जब तक भारत से धन का प्रवाह ब्रिटेन की ओर जारी रहेगा, तब तक कोई भी सुधार वास्तविक रूप से भारतीय समाज को लाभ नहीं पहुंचा सकता (quoted in Chandra, 1982, p. 125)।

(घ) बाल गंगाधर तिलक: तिलक ने इस सिद्धांत को राष्ट्रवादी राजनीतिक भाषा दी। उन्होंने कहा – “भारत की गरीबी किसी भाग्य या दैवीय शक्ति की देन नहीं है, बल्कि यह विदेशी शासन की नीतियों का प्रत्यक्ष परिणाम है” (Chandra, 1982, p. 118)। उनके इस कथन ने आर्थिक मुद्दे को राजनीतिक चेतना से जोड़ दिया और स्वराज्य की मांग को जनता के बीच वैध ठहराया।

(ङ) अन्य विचारक: दयानंद सरस्वती ने स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग पर बल दिया और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार को आर्थिक स्वतंत्रता का मार्ग बताया। रवींद्रनाथ ठाकुर ने भी ब्रिटिश शासन की नीतियों को भारतीय आत्मनिर्भरता और सृजनशीलता के लिए बाधक माना।

इस प्रकार, नौरोजी का सिद्धांत केवल व्यक्तिगत विचार नहीं रहा। अनेक राष्ट्रवादी नेताओं और समाज सुधारकों ने इसे अपने-अपने तर्कों से पुष्ट किया। यह विविध दृष्टिकोण मिलकर औपनिवेशिक शासन की वास्तविकता को उजागर करते हैं और इस बात को प्रमाणित करते हैं कि भारत की गरीबी और पिछड़ापन किसी स्वाभाविक परिस्थिति का परिणाम नहीं, बल्कि सुनियोजित औपनिवेशिक शोषण का फल था।

ऐतिहासिक साक्ष्य

धन की निकासी का सिद्धांत केवल वैचारिक तर्क तक सीमित नहीं था, बल्कि इसके समर्थन में अनेक ऐतिहासिक आँकड़े और घटनाएँ उपलब्ध हैं। इन साक्ष्यों से यह स्पष्ट होता है कि ब्रिटिश शासनकाल में भारत की संपत्ति व्यवस्थित रूप से इंग्लैंड भेजी जा रही थी और उसका सीधा परिणाम भारतीय समाज की निर्धनता और अकालों में दिखाई दिया।

(क) निर्यात अधिशेष और व्यापार असंतुलन: 1860 से 1900 के बीच भारत का निर्यात अधिशेष निरंतर बढ़ता गया। ब्रिटेन के लिए भारत से निर्यातित वस्तुओं का मूल्य आयात की तुलना में कहीं अधिक था, लेकिन उस अतिरिक्त धन का लाभ भारत को नहीं मिला। उसे “होम चार्जेंस” और ब्रिटिश अधिकारियों की पेंशन आदि के भुगतान में ब्रिटेन भेज दिया जाता था (Naoroji, 1901, p. 101) ^[4]। उदाहरणस्वरूप, 1870 के दशक में भारत का वार्षिक निर्यात अधिशेष लगभग 30 करोड़ रुपये आँका गया था, किंतु भारत में उसके समानांतर कोई पूँजी निवेश नहीं हुआ (Dutt, 1902, p. 142) ^[2]।

(ख) भूमि कर और राजस्व व्यवस्था: ब्रिटिश शासन ने भूमि राजस्व की दरें इतनी ऊँची रखीं कि किसान अपनी उपज का बड़ा हिस्सा कर में चुकाने को विवश हुए। मद्रास और बॉम्बे प्रेसीडेंसी में ‘रैयतवारी व्यवस्था’ और बंगाल में ‘स्थायी बंदोबस्त’ ने किसानों पर अत्यधिक बोझ डाला। आर.सी. दत्त लिखते हैं कि “भारतीय किसान अपने ही खेत में मजदूर बन गया” (Dutt, 1902, p. 119) ^[2]।

(ग) अकाल और खाद्यान्न संकट: 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत में लगातार अकाल पड़े – 1866 का उड़ीसा अकाल, 1876–78 का दक्षिण भारत का भीषण अकाल, और 1899–1900 का बंगाल व पंजाब अकाल। इन अकालों में लाखों लोग भूख से मर गए। विडंबना यह थी कि इन्हीं वर्षों में भारत से भारी मात्रा में अनाज ब्रिटेन निर्यात किया गया। बिपिन चंद्र के अनुसार, “जब भारत भूख से तड़प रहा था, तब ब्रिटेन की मंडियों में भारतीय गेहूँ और चावल पहुँचाए जा रहे थे” (Chandra, 1982, p. 127)।

(घ) औद्योगिक पतन: ब्रिटिश नीतियों के कारण भारतीय कपड़ा उद्योग, धातुकर्म, और हस्तशिल्प धीरे-धीरे नष्ट हो गए। 1800 के बाद भारत के सूती वस्त्र उद्योग, जो कभी विश्व-प्रसिद्ध थे, ब्रिटिश मिलों की प्रतिस्पर्धा में टिक नहीं पाए। नौरोजी ने लिखा, “भारतीय बुनकर, जिनके करघे कभी यूरोप को सजाते थे, अब कर्ज और भूख से मर रहे हैं” (Naoroji, 1901, p. 110) ^[4]।

(ङ) वित्तीय आँकड़े और होम चार्जेंस: “होम चार्जेंस” के अंतर्गत भारत से ब्रिटेन को पेंशन, ऋण पर ब्याज, रेलवे गारंटी, तथा ब्रिटेन में स्थित दूतावासों का खर्च चुकाना पड़ता था। 19वीं सदी के अंत तक यह राशि प्रतिवर्ष 16 से 20 करोड़ रुपये तक पहुँच गई थी (Mukherjee, 2002, p. 53) ^[3]। यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि भारत की आय का बड़ा भाग ब्रिटेन के प्रशासनिक और औद्योगिक हितों में व्यय हो रहा था।

इस प्रकार, ऐतिहासिक आँकड़े और घटनाएँ यह स्पष्ट कर देते हैं कि भारत की निर्धनता और ब्रिटेन की समृद्धि आपस में गहराई से जुड़ी हुई थीं। भारत का अधिशेष निर्यात, भूमि कर की कठोर व्यवस्था, बार-बार आने वाले अकाल और औद्योगिक पतन — सभी इस बात की पुष्टि करते हैं कि धन की निकासी केवल एक सिद्धांत नहीं, बल्कि औपनिवेशिक वास्तविकता थी।

प्रभाव

(क) भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव:

धन की निकासी के सिद्धांत का सबसे गंभीर असर भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ा। एक ओर भारत से धन का निरंतर बहिर्गमन होता रहा, दूसरी ओर इस धन का पुनर्निवेश भारत में नहीं हुआ। परिणामस्वरूप भारत की उत्पादन क्षमता,

व्यापारिक संरचना और कृषि प्रणाली धीरे-धीरे कमजोर होती गई।

1. कृषि क्षेत्र पर दबाव: ब्रिटिश शासन ने भूमि राजस्व की दरें इतनी ऊँची रखी कि किसान अपनी आय का बड़ा हिस्सा कर के रूप में गँवा बैठते। इसके अतिरिक्त, राजस्व नकद में जमा करने की अनिवार्यता ने किसानों को महाजनों पर निर्भर बना दिया। नतीजतन, किसान कर्ज और गरीबी के जाल में फँस गए (Dutt, 1902, p. 119) ^[2]। दक्षिण भारत के 1876-78 के भीषण अकाल के समय भी किसानों से कर वसूला गया, जिससे लाखों लोगों की मृत्यु हुई (Chandra, 1982, p. 128) ^[1]।

2. उद्योग और हस्तशिल्प का पतन: भारत के पारंपरिक उद्योग, विशेषकर कपड़ा उद्योग, ब्रिटिश औद्योगिक नीति के कारण नष्ट हो गए। ब्रिटेन से मशीन निर्मित सस्ती वस्त्रों का आयात होने लगा, जिससे भारतीय बुनकरों और शिल्पकारों की आजीविका छिन गई। नौरोजी ने लिखा कि “भारतीय उद्योगों का विनाश ब्रिटिश उद्योगों की समृद्धि की कीमत पर हुआ” (Naoroji, 1901, p. 110) ^[4]।

3. पूँजी निर्माण का अभाव: भारत में उत्पादित अधिशेष धन ब्रिटेन चला जाता था, इसलिए यहाँ उद्योग, शिक्षा, स्वास्थ्य और बुनियादी ढाँचे पर पर्याप्त निवेश नहीं हो पाया। मुखर्जी लिखते हैं कि “धन की निकासी ने भारत को एक पूँजी-विहीन अर्थव्यवस्था बना दिया, जो विकास की किसी भी राह पर नहीं चल सकी” (Mukherjee, 2002, p. 59) ^[3]।

4. व्यापारिक असंतुलन: भारत को कच्चे माल के आपूर्तिकर्ता और ब्रिटेन को तैयार माल के उपभोक्ता बाजार के रूप में गढ़ा गया। यह असंतुलन भारतीय अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर बनने से रोकता रहा। जैसा कि बिपिन चंद्र लिखते हैं, “भारत की संपत्ति यूरोप की औद्योगिक क्रांति का आधार बनी, जबकि स्वयं भारत निर्धनता में धँसता चला गया” (Chandra, 1982, p. 122) ^[1]।

5. गरीबी और अकाल की स्थायी स्थिति: 19वीं शताब्दी में बार-बार पड़े अकाल और व्यापक गरीबी यह प्रमाणित करते हैं कि भारत की अर्थव्यवस्था पर धन की निकासी ने विनाशकारी असर डाला। नौरोजी ने इसे भारत की “आर्थिक रक्त-क्षीणता” (Economic bleeding) कहा था (Naoroji, 1901, p. 104) ^[4]।

इस तरह, धन की निकासी ने भारतीय अर्थव्यवस्था को कृषि, उद्योग, व्यापार और पूँजी निर्माण – सभी स्तरों पर गहरा आघात पहुँचाया। भारत, जो कभी विश्व में समृद्धि और हस्तशिल्प का केंद्र था, औपनिवेशिक शोषण के चलते निर्धन और पिछड़ा बना दिया गया।

(ख) राजनीतिक और सामाजिक प्रभाव

1. राजनीतिक चेतना का विकास: धन की निकासी के सिद्धांत ने भारतीयों के बीच यह धारणा स्पष्ट कर दी कि ब्रिटिश शासन भारत के कल्याण के लिए नहीं, बल्कि ब्रिटेन के आर्थिक हितों की पूर्ति के लिए है। दादाभाई नौरोजी का तर्क था कि “ब्रिटिश शासन की नीतियाँ न्याय और समानता के सिद्धांतों के विरुद्ध हैं” (Naoroji, 1901, p. xiii) ^[4]। इस विचार ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रारम्भिक नेताओं को औपनिवेशिक नीतियों के विरुद्ध आवाज उठाने का आधार दिया।

2. राष्ट्रवाद की वैचारिक नींव: धन की निकासी का सिद्धांत भारतीय राष्ट्रवाद का एक मजबूत वैचारिक हथियार बना। बिपिन चंद्र लिखते हैं कि “यह सिद्धांत भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के लिए सबसे शक्तिशाली आर्थिक तर्क था, जिसने स्वराज्य की माँग को वैधता प्रदान की” (Chandra, 1982, p. 118) ^[1]। इसने आम जनता को यह समझाया कि उनकी निर्धनता प्राकृतिक कारणों से नहीं, बल्कि विदेशी शासन की नीतियों का परिणाम है।

3. सामाजिक असमानता और वर्गीय विभाजन: औपनिवेशिक नीतियों से समाज में आर्थिक विषमता बढ़ी। ग्रामीण गरीब वर्ग और अधिक निर्धन हो गया, जबकि कुछ सीमित भारतीय व्यापारी और ज़मींदार ब्रिटिश शासन से लाभ उठाकर समृद्ध हुए। आर.सी. दत्त ने इसे “सिस्टेमैटिक प्लंडर” की संज्ञा दी और कहा कि इस शोषण ने भारतीय समाज में “गहरी खाई” उत्पन्न कर दी (Dutt, 1902, p. 67) ^[2]।

4. शिक्षा और जनमत पर असर: 19वीं शताब्दी के अंत तक शिक्षित मध्यम वर्ग ने ब्रिटिश शासन की वास्तविकता को पहचानना शुरू किया। अखबारों, पत्रिकाओं और सार्वजनिक व्याख्यानों में धन की निकासी का मुद्दा व्यापक रूप से उठाया गया। इससे एक नए राजनीतिक नेतृत्व और संगठित जनमत का उदय हुआ (Mukherjee, 2002, p. 75) ^[3]।

5. स्वराज्य की माँग की ओर अग्रसरता: धन की निकासी के सिद्धांत ने धीरे-धीरे “न्यायपूर्ण शासन” की माँग से “स्वशासन” (Self-rule) की माँग की ओर भारतीय राजनीति को मोड़ दिया। बाल गंगाधर तिलक ने कहा था कि “भारतीयों की गरीबी विदेशी शासन की सबसे बड़ी देन है” (Quoted in Chandra, 1982, p. 121) ^[1]। इस प्रकार, यह सिद्धांत भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की विचारधारा में एक केंद्रीय तत्व बन गया।

इस हिस्से से साफ़ है कि धन की निकासी केवल आर्थिक समस्या नहीं रही, बल्कि इसने भारत के राजनीतिक जागरण, राष्ट्रवाद की चेतना और सामाजिक संरचना को गहराई से प्रभावित किया।

निष्कर्ष

औपनिवेशिक भारत में धन की निकासी का सिद्धांत केवल एक आर्थिक अवधारणा भर नहीं था, बल्कि यह भारतीय राष्ट्रीय चेतना का दर्पण भी था। दादाभाई नौरोजी ने जिस दूरदर्शिता से यह सिद्धांत प्रतिपादित किया, उसने यह स्पष्ट कर दिया कि भारत की गरीबी प्राकृतिक या आत्मनिर्भर कारणों से उत्पन्न नहीं हुई, बल्कि यह विदेशी शासन की नीतिगत व्यवस्था का परिणाम थी।

भारत से अधिशेष धन का निरंतर बहिर्गमन, कृषि और उद्योग का पतन, पूँजी निर्माण का अभाव और बार-बार पड़ने वाले अकाल – ये सभी तथ्य इस सिद्धांत को पुष्ट करते हैं। आर.सी. दत्त और अन्य अर्थशास्त्रियों ने भी यह दिखाया कि ब्रिटिश प्रशासन की राजस्व और व्यापारिक नीतियाँ भारत की आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था को धीरे-धीरे तोड़ती रहीं।

राजनीतिक और सामाजिक स्तर पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ा। इस सिद्धांत ने भारतीयों के बीच यह चेतना जगाई कि विदेशी शासन उनके शोषण का मुख्य कारण है। यही विचारधारा आगे चलकर भारतीय राष्ट्रवाद की वैचारिक नींव बनी और स्वराज्य की माँग को वैध ठहराने का सबसे सशक्त आधार बनी।

अंत: यह निष्कर्ष निकलता है कि धन की निकासी का सिद्धांत औपनिवेशिक भारत के आर्थिक और राजनीतिक इतिहास का केन्द्रीय तत्व रहा। इसने न केवल आर्थिक शोषण की वास्तविकता को उजागर किया, बल्कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को दिशा और वैचारिक आधार भी प्रदान किया।

संदर्भ सूची

1. Chandra B. India's struggle for independence. New Delhi: Penguin Books; 1982. p.118, 121-2, 128.
2. Dutt RC. The economic history of India under early British rule. London: Kegan Paul; 1902. p.56, 67, 102, 119.
3. Mukherjee A. Imperialism and the Indian economy. New Delhi: Sage Publications; 2002. p.59, 75.
4. Naoroji D. Poverty and un-British rule in India. London: Swan Sonnenschein; 1901. p.xiii, 35, 104, 110.

5. Seal A. The emergence of Indian nationalism: competition and collaboration in the later nineteenth century. Cambridge: Cambridge University Press; 1968.
6. Saraswati D. Satyarth Prakash. Benares: Star Press; 1875.
7. Patnaik U. A tangible concept of imperialism: Utsa Patnaik's estimates of colonial transfers from India. New Delhi: Sage Publications; 2023.
8. Gadre A. Deindustrialisation and the drain theory: the contours of economic degradation in British India. Munich: Munich Personal RePEc Archive; 2021. MPRA Paper No.108977.
9. Misra M. Business, race, and politics in British India, c.1850-1960. Oxford: Oxford University Press; 1999.
10. Yadav K, Mishra SK. A retrospection on economic development of India from colonial times to 1991 AD: from British Raj to economic liberalization. International Journal of Research – Granthaalayah. 2024;12(7):128-43.
11. Kumarappa JC. Economy of permanence: a quest for a social order based on non-violence. Varanasi: Sarva Seva Sangh Prakashan; 1945.